E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi, Assistant Professor, Department of Sanskrit, Dr. Shyama Prasad Mukherjee University, Ranchi

तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कः

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

आलोचकों ने अभिज्ञानशाकुन्तल के चतुर्थ अङ्क की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। वस्तुतः यह अङ्क महाकवि कालिदास की नाट्यकला का चरमोत्कर्ष है। इस अङ्क में उनकी काव्य-प्रतिभा, अनुपम नाट्यकौशल, अप्रतिम प्रकृति प्रेम, भावना की सरसता, लौकिक ज्ञान की गरिमा आदि के साक्षात् दर्शन होते हैं। चतुर्थ अङ्क की कतिपय विशेषताओं का उल्लेख निम्नांकित है-

१. छाया की भाँति सदा साथ रहने वाली अनसूया तथा प्रियंवदा की ऊहापोहमय स्थिति से इस अङ्क का प्रारम्भ होता है। इस अङ्क के विष्कम्भक में दुष्यन्त के चिन्तन में सुध-बुध खोयी शकुन्तला के द्वारा अतिथि सत्कार न करने पर उसके ऊपर महर्षि दुर्वासा का शाप रूपी वज्रपात तथा अनुनय-विनय करने पर किसी अभिज्ञान द्वारा पुनः दुष्यन्त द्वारा शकुन्तला के अभिज्ञान (पहचान) की कल्पना से नाटक के दो लक्ष्य सिद्ध हो जाते हैं। प्रथम उनके भावी वियोग का मार्ग निर्बाध हो जाता है। दूसरे अभिज्ञान की योजना से नाटक के नाम की सार्थकता भी सिद्ध हो जाती है। इस प्रकार नाट्य-कथानक में आमूल परिवर्तन का सूत्रपात होता है। वस्तुतः शाप और मुद्रिका की कल्पना ने क्रमशः त्याग और बलिदान से प्रेम को पवित्र करने तथा नाटक को सुखान्त बनाने में अभूतपूर्व भूमिका निभायी है।

२. प्रातःकाल के वर्णन में एक ही साथ चन्द्रमा के अस्ताचल की जाने तथा सूर्य के उदयाचल पर्वत पर आरूढ होने के द्वारा संसार के प्राणियों की दशाओं में अवश्यम्भावी परिवर्तन का नियमन-

यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीनामाविष्कृतोऽरुणपुरःसर एकतोऽर्कः।

तेजोद्वयस्य युगपद्व्यसनोदयाभ्यां लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु।।

प्रकारान्तर से इस बात का संकेत करता है कि मानव जीवन में सुख (प्रणयजनित आनन्द) सदा स्थायी नहीं रहता। प्राणी को कड़वे घुट भी पीने पड़ते हैं।

निम्नाङ्कित श्लोक में प्रणयी की उपेक्षाजनित शकुन्तला की असह्य मनोव्यथा को व्यञ्जित कराकर कवि ने अबला मात्र के प्रति करुणा एवं सहानुभूति जगायी है-

अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वती मे

दृष्टिं न नन्दयति संस्मरणीयशोभा।

इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनस्य

दुःखानि नूनमतिमात्रसुदुःसहानि।।

३. इस अङ्क में कालिदास ने मानव एवं प्रकृति को एक ही प्रणय सूत्र बंधन से बांध दिया है। प्रकृतिपेलवा शकुन्तला की विदाई के अवसर पर उसे सुसज्जित एवं अलङ्कृत करने के लिए वनस्पति आभूषण और वस्त्र देते हैं-

क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डु तरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतं

निष्ठ्यूतश्चरणोपरागसुभगो लाक्षारसः केनचित्।

अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितैः

दत्तान्यभरणानि नः किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्वभिः।।

अर्थात् हमको किसी वृक्ष ने चन्द्रमा के तुल्य श्वेत माङ्गलिक रेशमी वस्त्र दिया। किसी ने पैरों को रंगने के योग्य लाक्षारस (अलक्तक, महावर) प्रकट किया। अन्य वृक्षों ने कलाई तक उठे हुए, सुन्दर किसलयों की प्रतिस्पर्धा करने वाले, वनदेवता के करतलों से आभूषण दिए।

महर्षि कण्व उनसे (तपोवन तरुओं से) पुत्री शकुन्तला की विदाई का आदेश मांगते हैं-

“भो भोः संनिहितास्तपोवनतरवः!

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या

नादत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।

आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः

सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्”।।

अर्थात् हे समीपस्थ तपोवन के वृक्षों, तुम्हें बिना जल पिलाए जो पहले जल नहीं पीती थी, तुम्हारे प्रति प्रेम के कारण जो अलंकारों की प्रेमी होने पर भी तुम्हारे पुष्पोद्गम के समय जिसका उत्सव होता था, वह यह शकुन्तला अब पतिगृह को जा रही है, तुम सब अपनी स्वीकृति दो।

पुत्रवत् विरहकातर मृगशावक शकुन्तला को रोकने के लिए सत्याग्रह करता है। शकुन्तला की बहिन सरीखी लतायें विरह विदग्ध होकर आँसू बहाती हैं, भाई-सरीखे मृग ग्रास का चबाना छोड़ देते हैं, मयूर नर्तन करना बन्द कर देते हैं–

उद्गलितदर्भकवला मृग्यः परित्यक्तनर्तना मयूराः।
अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्यश्रूणीव लताः।।

मानव और प्रकृति के बीच इतना तादात्म्य, इतना घनिष्ठ सम्बन्ध अन्यत्र कहीं नहीं दृष्टिगोचर होता। क्या प्रकृति के द्वारा किया गया इस प्रकार का अनसन, सत्याग्रह और हड़ताल किसी दूसरे कवि की कल्पना में सम्भव था? अपनी सन्तान के वियोग में माता-पिता, भाई-बन्धु को विलखते तो सभी देखते हैं पर किसी के असह्य वियोग में लताओं को द्रवीभूत होते किसने देखा? और पशु, पक्षी, वनस्पति आदि को मित्र, पुत्र, अभिभावक आदि के रूप में किसने सुना?

४. कण्व के द्वारा शकुन्तला को दिया गया शाश्वत एवं सार्वभौम उपदेश इसी अङ्क में है जो प्रत्येक बधू के जीवन मार्ग में पदे पदे पथ प्रदर्शन करता है-

शुश्रूषस्व गुरुन् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीने
भर्तुर्विप्रकृताऽपि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहीणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः।।

अर्थात् अपने गुरुजनों (मान्यजनों) की सेवा करना, अपनी सपत्नियों (सौतों) से प्रिय सखी का-सा व्यवहार करना, तिरस्कृत होने पर भी क्रोध के आवेश में आकर पति के प्रतिकूल कार्य मत करना, अपने आश्रितों पर अत्यन्त उदार रहना, अपने ऐश्वर्य का अभिमान मत करना, इस प्रकार आचरण करने वाली स्त्रियाँ गृहलक्ष्मी के पद पर अधिष्ठित होती हैं और इसके विपरीत चलने वाली कुल के लिए अभिशाप होती हैं।

५. पिता कण्व की अनुमति के बिना ही उनकी अनुपस्थिति में उनकी लाडली पुत्री के साथ गान्धर्व विवाह करने वाले बहुपत्नीक चक्रवर्ती सम्राट् दुष्यन्त को दिया जाने वाला सन्देश भी यहीं है-

अस्मान् साधु विचिन्त्य संयमधनानुच्चैः कुलं चात्मन-

स्त्वय्यस्याः कथमप्यबान्धवकृतां स्नेहप्रवृत्तिं च ताम्।

सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकमियं दारेषु दृश्या त्वया

भाग्यायत्तमतः परं न खलु तद् वाच्यं बधूबन्धुभिः।।

अर्थात् संयमरूपी धन वाले हम लोगों का, अपने ऊँचे कुल का और तेरी इस (शकुन्तला) के, बन्धुओं के द्वारा न किए हुए, स्वाभाविक प्रेम-व्यापार का ठीक विचार करके तुम इसको अपनी स्त्रियों में सबके समान गौरव के साथ देखना। इससे आगे भाग्य के अधीन है, वह हम वधू के सम्बन्धियों को नहीं कहना चाहिए।

६. वीतरागी महर्षि कण्व के तपःपूत एवं निर्विकार मानस को उद्वेलित करने वाले पुत्री प्रेम का उद्घाटन भी इसी अङ्क में हुआ है-

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया

कण्ठः स्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम्।

वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः

पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनया विश्लेषदुःखैर्नवैः।।

अर्थात् आज शकुन्तला विदा होगी, इसलिए मेरा हृदय दुःख से भर रहा है। आँसुओं के बहने को रोकने से मेरा गला भर आया है। मेरी दृष्टि चिन्ता के कारण निश्चेष्ट हो गई है। जंगल में रहने वाले मुझको शकुन्तला के प्रति प्रेम के कारण इस प्रकार का दुःख हो रहा है तो गृहस्थ लोग पहली बार पुत्री के वियोग के दुःख से कितने अधिक दुःखित होते होंगे?

पुनश्च

शममेष्यति मम शोकः कथं नु वत्से त्वया रचितपूर्वम्।

उटजद्वारविरूढं नीवारबलिं विलोकयतः।।

अर्थात् हे पुत्री, तेरे द्वारा पहले पूजा के रूप में डाले गए और अब कुटी के द्वार पर उगे हुए नीवार के उपहार को देखते हुए मेरा शोक भला कैसे शान्त हो सकेगा?

प्रणय-पारखी महाकवि कालिदास की प्रेम-भावना का जयघोष करने वाला आदर्श प्रेम भी इसी अङ्क में सजीव हो उठा है।

पूरा का पूरा चतुर्थ अङ्क सखीप्रेम, पितृप्रेम तथा पुत्रीप्रेम से ओत-प्रोत है। पिता कण्व पुत्री-स्नेह से कातर हैं, शकुन्तला की दोनों सखियाँ (अनसूया और प्रियंवदा) यदि अपनी प्रियसखी के हितचिन्तन-मूलक स्नेह से सिक्त हैं तो प्रकृति मानव-स्नेह की दीवानी। पूरा आश्रम प्रेम के अखण्ड, साम्राज्य की दीप्ति से दीप्तिमान् हो गया हैं। यहाँ पर चतुर्थ अङ्क की महत्ता एवं वैशिष्ट्य को प्रख्यापित करने वाले पं० चन्द्रशेखर पाण्डेय के कथन को उद्धृत करना समीचीन होगा-"कण्व की व्यग्रता, अनसूया और प्रियंवदा की आनन्द में परिणत चिन्ता, कण्व का राजा के नाम सन्देश और भावी गृहलक्ष्मी को उपदेश तथा आश्रम की नीरवता में विविध भाव और घटनायें, ये सब ऐसी मार्मिकता तथा प्रगाढ़ सुकुमारता से चित्रित हुए हैं कि प्रतीत होता है कि यह अङ्क मानो शब्द निर्मित मानव हृदय ही हो"।